International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 15, Issue 5, May 2025,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

आधुनिक काल में मिथिला की ज्ञान पद्धतियों की विरासत

साक्षी, शोध छात्रा
स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, इतिहास विभाग,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

डा0 बबिता कुमारी, सहायक प्राध्यापिका, इतिहास विभाग,
एम. के. एस. कॉलेज, चन्दौना, दरभंगा (बिहार)

शोध सारांश

मिथिला की पावन धरती को यहाँ जन्म लेने वाले अनेक महान् विभूतियों ने अपने ज्ञान की ज्योति से सींचने का काम किया है। मिथिला की पावन भूमि अपने वरद पुत्रों के ज्ञान के प्रकाश से आदि काल से आलोकित होता आ रहा है। मिथिला को ये विद्वान अपने ज्ञान और दर्शन का लोहा हिन्दुस्तान के अन्य हिस्सों में भी विद्वानों को मनवा चुकी है। गौतम, जनक, याज्ञवल्क्य, कणाद, कपिल, मंडन मिश्र वाचस्पति, कुमारिलभट्ट आदि की जन्मभूमि मिथिला ही है। महाकवि विद्यापति और चन्दा झा सदृष प्रतिभाओं ने इसी भूमि पर जन्म धारण किया था। अहिल्या, सीता, गार्गी, भारती एवं लखिमा के समान आदर्श नारियाँ इसी धरती की देन हैं। इनके उज्ज्वल एवं आदर्श चरित्र ने स्वयं नारीत्व को उत्कर्ष के उच्चतम शिखर पर आसीन कर दिया है। धर्म, दर्शन, कला आदि सभी क्षेत्रों के मिथिला की बहुमुखी एवं सारस्वत प्रतिभा का स्पष्ट परिचय मिलता है।

सागर उमड़ता है और ललाट पर ज्ञानारूण का दिव्य प्रकाश। धन–धान्य से परिपूर्ण होने के कारण यहाँ का सामान्य जीवन बड़ा ही सुखमय, विनोदपूर्ण और मस्ती भरा है। नैयायिकों की भूमि होने के कारण यहाँ के लोग बड़े धर्मभीरू, आस्थावान एवं अध्यात्म–प्रिय होते हैं। इस तरह यहाँ लौकिक सुख एवं आध्यात्मिक आनन्द का मणि–कांचन संयोग दिखलाई पड़ता है। यही कारण है कि यहाँ के लोग संसार में रहकर भी भरसक उससे सर्वथा अनासक्त, असम्पृक्त तथा निर्लिप्त रहते हैं।

कूट शब्दः– मिथिला, ज्ञान–पद्धति, विरासत, उपनिषद्, विदेह, वैदिक साहित्य सांख्य दर्शन, न्याय दर्शन ।

प्राचीन काल से ही मिथिला में ज्ञान पद्धतियाँ विकसित एवं सवंर्द्धित होती रही। मिथिला में गौतम के द्वारा न्याय, कणाद के द्वारा वैशेषिक और कपिल के द्वारा सांख्य दर्शन का प्रतिपादन किया। मिथिला की न्याय परम्परा काफी उर्वरा सावित हुई और उदयन एवं वाचस्पति ने इसे सर्वोच्च शिखर तक पहुँचाने का काम किया। इनके समय में ज्ञान परम्परा पल्लवित होकर मिथिला में ज्ञान का मार्ग प्रशस्त किया। धर्मशास्त्र के क्षेत्र में भी मिथिला की विशिष्टता याज्ञवल्क्यस्मृति के रूप में प्रगट हुई और ज्ञान परम्परा की यह अविरल धारा लगातार प्रवाहित होकर मिथिला की भूमि को उर्वरा बनाती रही। ठीक इसी प्रकार ज्ञान के क्षेत्र में मीमांसा दर्षन का भी मिथिला की ज्ञान परम्परा को पल्लवित एवं पुष्पित किया। 11वीं सदी के अन्त में जब कर्नाट वंश के अधीन मिथिला के स्वतंत्र राज्य की आधारशिला रखी गयी तो यहाँ शिक्षा एवं दर्शन के नवोन्मेष के लिए अनुकूल वातावरण दृष्टिगोचर होने लगा। प्रस्तुत अध्याय में आधुनिक काल में मिथिला की ज्ञान पद्धतियों की परम्परा का विवेचन किया जा रहा है।

महेश ठाकुर का समय 1556 से 1569 ई. तक माना जाता है। उन्होंने 'अतिचार–निर्णय' नामक ज्योतिष ग्रंथ की रचना की थी। उसमें नक्षत्रों की चाल एवं स्थिति के अनसार धार्मिक कृत्यों पर पड़नेवाले भले और बूरे प्रभावों का वर्णन है। महेश ठाकुर के पुत्र परमानन्द ठाकुर ने गणित ज्योतिष पर 'सिद्धान्त–सुधा' का निर्माण किया। हेमांगद ठाकुर

ने 'ग्रहणमाला' का सृजन किया। इस पुस्तक में गणना के आधार पर उन्होंने आनेवाले बहुत वर्षो तक होनेवाले चन्द्र एवं सूर्य ग्रहण की सूची, समय, तिथि, महीना, एव साल के साथ तैयार कर दी थी। भरत उपाध्याय का समय 17वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध कहा जाता है। उन्होंने 'रसाल' नाम की पुस्तक लिखी। उसका संबंध भी फलित एवं गणित ज्योतिष से है। भवेश ने भास्कराचार्य के प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रंथ 'लीलावती' पर अपने विचारानुसार भाष्य प्रस्तुत किया। उसी प्रकार माधव शर्मा ने शुभ एवं अशुभ शकुनों के फलाफल का विवेचन कर 'अद्भुत दर्पण' नामक शकुन–षास्त्र की रचना की।[1]

उस युग में वैदिक साहित्य से संबंधित पुस्तकों के प्रणयन की ओर मिथिला के विद्वानों की अभिरूचि अति अधिक दृष्टिगत नहीं होती है। शत्रुघ्न शर्मा ने एक ग्रंथ मंत्रार्थ–दीपिका की रचना की थी। उस पुस्तक में संध्या, श्राद्ध आदि कर्मो के विषय में प्रयुक्त वैदिक मंत्रों का विवेचन कर उनका स्पष्टीकरण किया गया है।[2]

राजा धीरसिंह के पुत्र राजकुमार गदाधर ने तंत्र–प्रदीप का प्रणयन किया था। देवनाथ ठाकुर ने मंत्र–कौमुदी की रचना की। जगदानन्द ने 'कुल–दीपक' का सृजन किया। उस ग्रंथ में तंत्र के मूल सिद्धान्त पर सुन्दर विवेचन के साथ प्रकाश डाला गया है।[3]

नरसिंह ठाकुर ने कई ग्रंथ लिखे। उनमें शंकराचार्य की 'आनन्द लहरी' के ऊपर उनका विद्वतापूर्ण भाष्य सराहनीय एवं पठनीय ग्रंथ है।

धर्मशेास्त्र पर बहुत ग्रंथों की रचना की गयी। इन ग्रंथों में मानव जीवन के सभी पहलुओं पर विचार किया गया है। उनके धार्मिक, सामाजिक, वैयक्तिक तथा नित्य वैमित्तिक आचार–विचार के संबंध में नियम बनाकर तदनुसार बरतने का निर्देश दिया गया है। श्रुतिस्मृति तथा पुराण–वाक्यों का भी वहाँ विश्लेषण एवं विवेचन हुआ है। शपथ–ग्रहण, मांस–भक्षण, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन, विवाह, श्राद्ध, मृतक–दाह–संस्कार आदि–आदि विषयों पर विचार कर उन ग्रंथों में निर्णय दिया गया है।[4]

समालोचनात्मक भाष्य और उनमें निहित विचारों एवं भावों का वृहद् रूप से स्पष्टीकरण–ग्रन्थ मात्र थे।[5]

महेश ठाकुर ने बादशाह अकबर एवं उसके उत्तराधिकारियों का इतिहास संस्कृत गद्य में लिखना आरंभ किया था। पर वह पूरा न हो सका। उस ग्रंथ का नाम था–'सर्वदेश–वृत्तान्त–संग्रह'। संस्कृत साहित्य में पुराणों, रामायण एवं महाभारत के लेखकों के अतिरिक्त बहुत कम विद्वानों ने प्राचीन अथवा मध्य–युगीन भारत के इतिहास लिखने का श्रम किया था। कश्मीरी कवि कल्हण एवं विल्हण के नाम इस क्षेत्र में आते हैं, जिन्होंने क्रमशः राजतरंगिणी और विक्रमांकचरित्र का निर्माण किया था। मिथिला के महेश ठाकुर ने एक इतिहास लिखना आरंभ किया, पर वे सफल न हो सके।[6]

18वी शती के मध्य में 20वीं शताब्दी के मध्य तक ज्ञान पद्धति की विरासत

ओइनवार राजकुल के लगभग सभी शासक संस्कृत साहित्य के पोषक तथा उसके विद्वानों के पोषक थे। उनमें से कई मर्मज्ञ साहित्य–सेवी एवं लेखक भी थे। अतः उनके शासनकाल में संस्कृत साहित्य का आशातीत संवर्द्धन हुआ। राजा लक्ष्मीनाथ सिंह देव ओइनवार कुल का अंतिम नरेष था। उसकी मृत्यु नसरत शाह के द्वारा 1526 ई. में हुई। मिथिला पर अब सीधा मुसलमानों का शासन आरंभ हुआ। यह अवस्था 1556 ई. तक रही। पश्चात् बादशाह अकबर ने मिथिला की शासन–व्यवस्था खण्डवला ब्राह्मण कुल के एक बहुश्रुत संस्कृत विद्वान् महेश ठाकुर के अधीन की। अब मिथिला पर फिर से संस्कृत के प्रेमी ब्राह्मणों का राज्य हुआ। उससे साहित्य संवर्द्धन के प्रवाह में पुनः प्रगति आयी। इसके पूर्व 1526 और 1566 के बीच भी वह धारा पूर्णतया अवरूद्ध नहीं हो गयी थी। केवल उसकी गति किंचित् मंद पड़ गयी थी।[7] महेश ठाकुर स्वयं अप्रतिम विद्वान् एवं लेखक थे। इसकी चर्चा पूर्व में की जा चुकी है। महेश–कुल का मिथिला पर शासन भारतवर्ष पर मुसलमानी शासन के अंत के पष्चात् भी अंग्रेजी शासन की समाप्ति तक बना रहा था।

मिथिला पर अंग्रेजों का राज्य 1768 ई. में दिल्ली के बादशाह शाह आलम से बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्राप्त कर लेने के पश्चात् आरंभ हुआ।

वैसे तो 1757 ई. में ही देशद्रोही मीर जाफर के कुचक्र एवं विश्वासघात के कारण बंगाल के नवाब सिराज–उद्दौला के पलासी के युद्ध –क्षेत्र में पराभव एवं पीछे मीर जाफर के पुत्र मीरन के द्वारा उसकी हत्या के पश्चात् अंग्रेजों का प्रभाव पूरे बिहार प्रान्त पर पड़ चुका था। मिथिला बिहार का अंश था ही। अतः उससे उसका वंचित रहना संभव न था। पर उस विकट परिस्थिति में भी मिथिला पर ब्राह्मण–कुल के हिन्दू राजा के शासन होने के कारण संस्कृत साहित्य के विकास में बाधा नहीं पड़ी। पूर्व के पृष्ठों में 18वीं शती के मध्य तक अर्थात् अंग्रेजों के मिथिला पर शासन के आरंभ काल तक हुई संस्कृत साहित्य की प्रगति का दिग्दर्शन करा जा चुका है। उसके पश्चात् की प्रगति का अंकन आगे किया जाएगा। विदेशी अंग्रेजी शासन की पराधीनता से भारतवर्ष 1947 ई. में स्वतंत्र हो गया।[8] अंग्रेजों की पराधीनता–काल से लेकर आजतक संस्कृत साहित्य के विकास में मिथिला का क्या हाथ रहा, इस पर विचार किया जाना अपेक्षित है।

मिथिला में खण्डवला राजकुल में शासनारंभ के लगभग दो शताब्दी पश्चात् भारत में अंग्रेजों का राज्य आरंभ हुआ। इस अवधि में यहाँ संस्कृत की जो प्रगति हुई, उसका संक्षिप्त विवरण पूर्व में दिया गया है। उसके पीछे भी मिथिला में साहित्य का सृजन होता रहा। इस काल में संस्कृत साहित्य की जितनी संवृद्धि मिथिला जैसे छोटे जनपद में हुई, उतनी भारतवर्ष के किसी एक छोटे प्रदेश में नहीं हो सकी। अनेक भिन्न–भिन्न विषयों पर पुस्तके लिखी गयी। वे सभी प्रायः उच्च कोटि के ग्रंथ थे। मिथिला में संस्कृत का पठन–पाठन परम्परागत चालू था। जो किसी अंश में अब भी बना हुआ ह। यही कारण था कि संस्कृत के पारंगत विद्वानों की यहाँ कमी नहीं रही। विद्याव्यसनियों के सुदद्योग से साहत्य का सतत् बहुमुखी विकास होता रहा। मिथिला के निवासी विद्वान घर पर रहते हों या बाहर, उनका संस्कृत के प्रति अनुराग कभी कम नहीं देखा गया। जहाँ भी रहे, अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन उन्होंने पुस्तकों का प्रणयन कर किया। विद्यार्थियों को निःशुल्क षिक्षा प्रदान करना मिथिला में पुरानी प्रचलित परिपाटी थी और आज भी है। इससे संस्कृत अध्ययन की गति में कभी अवरोध नहीं हुआ और उसका विकास होता रहा।[9]

पहले की भाँति अंग्रेजी शासन के आरंभ होने के पश्चात् की अवधि में भी नाना विषयों पर अनेक संस्कृत ग्रंथों का सृजन हुआ, जिन सभी का ब्यौरा यहाँ उपस्थित करना संभव नहीं है। इस युग में काव्य और साहित्य के अतिरिक्त धर्मशास्त्र, ज्योतिष एवं तंत्र पर अत्यधिक ग्रंथ लिखे गये। परन्तु व्याकरण योग, मानव–चरित्र–संगठन ,आदि विषयों पर कोई पुस्तक लिखी नहीं गयी। जितनी भी पुस्तकों का सृजन इस समय हुआ, उनमें प्रायः स्वतंत्र ग्रंथों की संख्या अत्यल्प थी। विशेषतया वे भाष्य अथवा टीकाएँ थीं।[10]

अंग्रेजी शासन प्रारंभ होने के मस्तिष्क पर उसका विशेष प्रभाव पड़ा, क्योंकि उससे रोटी की समस्या का हल आरंभ में सुलभता से होता था। किन्तु मैथिलों ने संस्कृत शिक्षा की परम्परा का त्याग नहीं किया। जैसे ऊपर कहा गया है, उन सबों ने भिन्न–भिन्न विषयों पर नये–नये ग्रंथ निर्माण करने का क्रम चालू रखा। इसका परिणाम यह हुआ कि जनक एवं याज्ञवल्क्य की भूमि मिथिला संस्कृत–साहित्य–सृजन–क्षेत्र में नाना प्रकार की बाधाओं के होते हुए भी देश के अन्य भागों से अपेक्षाकृत आगे रही।[11]

जितनी छोटी अथवा बड़ी पुस्तकें लिखी गयीं, उसका प्रणयन बहुधा स्वान्तः सुखाय हुआ। प्रसिद्ध की आसक्ति की कमी के कारण उन सबों का संरक्षण प्रणेताओं द्वारा नहीं हो सका। अतः उनमें से अधिकांश अप्राप्य हैं। उनकी कोई सूची भी प्राप्त नहीं है। किन्तु विद्वानों के शोध से पता चलता है कि अनेक पुस्तकें लिखी गयीं, जिनमें भाष्य, टीकाएँ तथा स्वतंत्र ग्रंथ भी थे। इस युग का साहित्यिक कृतियाँ भिन्न–भिन्न विषयों की थीं, जिनका उल्लेख नीचे किया जाता है:–

1. **छन्द–शास्त्र** – इस विषय के ग्रंथों को भिन्न–भिन्न छन्दों के चरणों में लय ठीक रखने के हेतु उचित स्थान पर किंचित् विश्राम का निर्देष किया गया है। इस प्रकार के विश्राम को पति कहा जाता है। किस छन्द में कितने अक्षरों अथवा कितनी मात्राओं के बाद यति का प्रयोग होगा, इस विषय का वर्णन शब्द शास्त्रों में किया गया है। संस्कृत के अलावा प्राकृत–छन्दों के संबंध में भी यति–भंग आदि दोषों का वर्णन ऐसी एक पुस्तक में किया गया है।

2. **काव्य एवं साहित्य** – इस कोटि के ग्रन्थों में सभी प्रकार की कविताएँ साहित्यिक भाष्य, नाटक, टीका तथा स्वतंत्र ग्रंथों का समावेश होता है।
3. **व्याकरण** – इस पर अनेक स्वतंत्र एवं भाष्य ग्रंथों का निर्माण हुआ।
4. **कोश** – सभी प्रचलित शब्दों के पर्याय अथवा अर्थ ऐसे ग्रंथों में विस्तार से व्याख्या के साथ दिये जाते हैं। ऐसी पुस्तकें संस्कृत में प्रायः छन्दोबद्ध लिखी गयी थीं। इस प्रकार के कोष–ग्रन्थों में एक 'वाक्चातुर्य–तरंगिणी' ग्रन्थ हे, जिसमें फारसी शब्दों का संस्कृत पर्याय दिया गया है।[12]
5. **नीतिशास्त्र** – नीति के अन्तर्गत राजनीति, मानव–कर्त्तव्य, चरित्र–संगठन आदि विषय आते हैं। इन विषयों पर कई ग्रंथों का निर्माण उस काल में हुआ। ऐसे ग्रन्थों के लेखन का निर्माण उस काल में हुआ। ऐसे ग्रन्थों के लेखन में तिरहुत (मिथिला) क लेखकों ने कौटिल्य के पक्ष का अनुसरण किया था।
6. **ज्योतिष** – गणित एवं फलित ज्योतिष पर अनेक नये–नये ग्रन्थों का निर्माण हुआ। इस प्रकार के ग्रन्थों में एक का नाम 'वनमाला' था। भिन्न–भिन्न ऋतुओं में नक्षत्र एवं ग्रन्थों की चाल और स्थिति के अनुसार कब और कैसी वर्षा होगी, इस विषय का विशद विवेचन इस ग्रंथ में किया गया है।[13]
7. **कामसूत्र** – पूर्व में वात्सायन ने पाटलिपुत्र में कामसूत्र का प्रणयन किया था। उसी की पद्धति का अनुसरण कर कवियों और लेखकों ने प्रणय, प्रेम एवं श्रृंगार से संबंधित ग्रंथों की रचना की।
8. **तन्त्रशास्त्र** – शक्ति की उपसना, दैवी शक्ति की प्राप्ति के हेतु तांत्रिक प्रयोग, योग, पूजन–पद्धति, ध्यान, समाधि, शरीर में दैवी शक्ति–सम्पन्न बिन्दुओं की स्थिति एवं उसकी पहचान आदि विषयों का समावेश तंत्रशास्त्र के अन्तर्गत होता है। उपर्युक्त विषयों पर बहुत–सी पुस्तकें लिखी गयी।[14]
9. **वेद** – वेदों एवं वेदांगों पर अनेक नये–नये भाष्यों की रचना की गयी। पं0 परमेश्वर झा ने गुण विष्णु द्वारा प्रस्तुत वेद–भाष्य पर विद्वत्तापूर्ण नया उपभाष्य प्रस्तुत किया। इस ग्रंथ का सम्यक् साहित्य–सेवी समाज में है।
10. **दर्शन** – आर्यो के षट्दर्शनों का बोध दर्शन कहने से होता है। न्याय, मीमांसा, योग, वेदान्त, सांख्य, वैशेषिक आदि दर्षनों पर पृथक्–पृथक् अनेक ग्रंथों का निर्माण हुआ। न्याय –दर्शन का पठन–पाठन मिथिला–निवासियों को सदा से अति प्रिय रहा है। इस कारण सभी दर्शनों से अधिक न्याय–दर्शन पर किताबें लिखी गयीं।[15]
11. **धर्मशास्त्र** – धार्मिक कर्त्तव्य, आचार, विचार, संस्कार, नित्य नैमित्तिक कर्म, शास्त्रीय आज्ञा–पालन, अनुशासन आदि विषयों का संबंध धर्मशास्त्र से है। अनेक ग्रन्थ इस संबंध मं लिखे गये, जिनमें जीवनपयोगी साधारण एवं सूक्ष्म बातों पर प्रणेताओं ने शास्त्रीय ढ़ंग से अपना विचार व्यक्त किया। उदाहरणार्थ पं0 योगदत्त झा के 'वपन विवेक' नामक ग्रन्थ का नाम उपस्थित किया जा सकता है। उसमें उचित ढ़ंग से क्षौर करने के हेतु नियमों का निर्धारण किया गया है।[16]
12. **भक्ति** – इस विषय पर अधिकाधिक साहित्य का सृजन हुआ। भागवत धर्म के निर्धारित नियमानुसार पूजा–अर्चना, भोग–राग, भक्ति–स्तुति, व्रत–विन्यास, उत्सव–समारोह तथा आराध्य के प्रति दास्य, सख्य अथवा वात्सल्य भाव के अनुसार अनुराग, श्रद्धा एवं प्रेम आदि का विवेचन इस कोटि के ग्रंथों में किया गया है।
13. **पुराण** – प्राचीन पुराणों की पद्धति पर भी इतिहास ग्रंथों का निर्माण हुआ। विजय गोविन्द ने 'राजाबलि' नामक ग्रंथ की रचना की जिसमें कलियुग के आरंभ काल से अंग्रेजी शासक वारेन हेस्टिंग्स तक के भारतवर्ष में राज करनेवाले राजाओं का इतिहास दिया गया है। इसके अतिरिक्त वृहत् पुराण ग्रन्थों से सार–संग्रह कर इस प्रकार के अन्य लघु ग्रन्थ तैयार किये गये।[17]
14. **इतिहास** – इस विषय पर ग्रन्थों का सृजन यद्यपि अधिक नहीं हुआ, पर वह अछूता भी नहीं रहा। राजाबलि का नाम ऊपर अंकित किया जा चुका है। किन्तु पुराणों की पद्धति पर उसका प्रणयन हुआ था। बीसवीं शताब्दी के मध्य के बाद 1958 ई. में दरभंगा जिले के समस्तीपुर अनुमंडल के समर्था ग्राम–निवासी वयोवृद्ध आचार्य राम निरीक्षण सिंह ने स्वाधीन–भारतम् नामक पुस्तक संस्कृत के अनुष्टुप् (चार चरणों के वर्ण छन्द जिसके प्रत्येक चरण में आठ–आठ अक्षर होते हैं)

छन्दों में लिखी थी। कश्मीरी कवि कल्हण ने कश्मीर का इतिहास छन्दों में 'राजतरंगिणी' नाम से सदियों पूर्व लिखा था। उसके पश्चात् इतिहास के क्षेत्र में संस्कृत वाङ्मय में पुस्तक प्रस्तुत करने का प्रयास उपर्युक्त आचार्य महोदय का ही था। स्वाधीन–भारतम् में 14 परिच्छेद हैं। इस पुस्तक में भारतवर्ष का इतिहास अंकित किया गया है, जिसमें महात्मा गाँधी के नेतृत्व में भारतीय कांग्रेस द्वारा किये गये स्वातंत्र्य संग्राम का विशेष वर्णन है। वे अंग्रेजी के भी विद्वान थे। पं0 रामावतार शर्मा ने भी इतिहास पर एक छोटी पुस्तक 1912 ई. में संस्कृत में लिखी थी।[1]

15. **शारीरिक विज्ञान एवं आधुनिक भाषा–विज्ञान** – इन विषयों पर भी पुस्तकों का प्रणयन हुआ। आचार्य रामावतार शर्मा ने 'कला–कामुदी' नामक ग्रन्थ 1904 ई. में लिखकर प्रकाषित किया। आधुनिक शारीरिक विज्ञान का विषय–प्रवेश उसे कहा जा सकता है। उसी प्रकार उनका दूसरा राजय भाषा–तत्त्व वर्त्तमान भाषा–विज्ञान के उपोद्घात के रूप में लिखा गया था। पं0 रामावतार शर्मा तिरहुत प्रमण्डल के सारन (छपरा) जिले के निवासी थे। प्राचीन काल में सारन जिला मिथिला की पौराणिक सीमाओं के अन्तर्गत नहीं था। किन्तु अब वर्तमान तिरहुत (मिथिला) प्रमण्डल के अन्दर है।

इस युग में तिरहुत में ऐसे अनेक विद्वानों का उद्भव हुआ, जिन्होंने संस्कृत
का भण्डार दर्शन जैसे अति गहन एवं गंभीर विषय के ग्रंथों से भर दिया। ऐसे विद्वानों की
प्रतिभा बहुमुखी थी।

आचार्य राम निरीक्षण सिंह, 'स्वाधीन–भारतम्' .और कुछ ने संस्कृत एवं हिन्दी के माध्यम से। इस कोटि के सभी मनीषियों के नामों का यहाँ अंकन संभव नहीं है। इन विद्वानों में अनेक ऐसे ही जो अति कठिन विषयों पर संस्कृत वाङ्मय में बड़ी दक्षता के साथ संभाषण, शास्त्रार्थ एवं वाद–विवाद कर सकते थे। सर्व–तंत्र–स्वतंत्र पं0 बच्चा झा, पं0 शशिनाथ झा, पं0 हरिहर कृपालु शास्त्री, तथा पं0 बालकृष्ण मिश्र आदि के नाम संस्कृत के महान विद्वान् के रूप में विख्यात थे। संस्कृत में दार्षनिक संभाषण तथा दक्षता के साथ साहित्य एवं दर्शन की शिक्षा देने के हेतु उनकी प्रसिद्धि बहुव्यापी थी।[18]

20वीं शताब्दी के दो विद्वानों के नाम संस्कृत एवं दर्शन–शास्त्र कर अनुपम सेवा के हेतु विश्व–विख्यात है। उसमें एक डा0 गंगानाथ झा दरभंगा जिले के पाहीटोली–सरसो ग्राम के निवासी थे, तथा दूसरे पं0 रामावतार शर्मा सारन (छपरा) जिले के रहने वाले थे। डॉ0 गंगानाथ झा का समय 1871 ई0 से 1941 ई0 तक था तथा पं0 रामावतार शर्मा का 1877 से 1929 ई0 तक। डॉ0 गंगानाथ झा ने विशेषतया अंग्रेजी के माध्यम से प्राचीन आर्य–दर्शनों पर ग्रंथ लिखकर उनका प्रचार एवं प्रसार किया। पं0 रामावतार शर्मा ने संस्कृत वाङ्गमय में संसार के आर्यो के प्राचीन षट्दर्शनों के अलावा एक नया दर्शन–शास्त्र 'परमार्थ–दर्शन' का प्रणयन कर दिया।

डॉ0 गंगानाथ झा ने दर्शन विषयक कई कठिन ग्रंथों का अनुवाद सर्वसाधारण के समझने योग्य सरल अंग्रेजी में करके संस्कृत नहीं जाननेवाले देशी एवं विदेशी दर्षन–ज्ञान–प्राचीन के इच्छुक समाज के लिए भारतीय दर्शन–शास्त्र का अध्ययन सुलभ तथा सहज कर दिया। कई ऐसे अनूदित ग्रंथों को उन्होंने अपनी विवेचनशील टिप्पणियों के साथ प्रकाशित किया और कुछ केवल भाषान्तरित किये गये। इस प्रकार के ग्रंथों में से कतिपय के नाम नीचे दिये जाते हैः–

(1) कात्यायन के भाष्य एवं उद्योतकर के वार्त्तिक के साथ 'न्याय–सूत्र'
(2) श्रीधराचार्य की न्याय–कन्दली के साथ प्रशस्तपादाचार्य का पदार्थधर्मसंग्रह,
(3) शवर स्वामी के भाष्य के साथ जैमिनी के मीमांसा सूत्र,
(4) कुमारिल भट्ट का श्लोक–वार्त्तिक,
(5) कुमारिल भट्ट का तंत्र–वार्त्तिक,
(6) व्यास–भाष्य के साथ पतंजलि का योग–सूत्र,
(7) वाचस्पति मिश्र की सांख्य–तत्त्व–कौमुदी,
(8) श्री हर्ष के खण्डन–खण्ड–खाद्य,

(9) विश्वनाथ न्याय–पंचानन कृत सिद्धान्त–मुक्तावली,

(10) कमलशील के भाष्य के साथ शान्ति–रक्षित कृत तत्त्व–संग्रह।[19]

डॉ0 गंगानाथ झा द्वारा प्रणीत अन्य दर्शन ग्रंथ निम्नांकित हैः–

(1) दि प्रभाकर स्कूल ऑफ पूर्व मीमांसा,

(2) शंकराचार्य एण्ड हिज वर्क,

(3) दि फिलॉसाफिकल डिसिप्लिन, तथा मंडन मिश्र के मीमांसानुक्रमणी पर संस्कृत में भाष्य। डॉ0 झा ने दर्शन संबंधी त्रैमासिक पत्रिका इण्डियन थॉट का सम्पादन 1907 से 1918 ई0 तक किया था।

डॉ0 झा अप्रतिम विद्वान थे तथा उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने दर्शन, साहित्य एव ंविधि संबंधी ग्रंथों की रचना की। मनुस्मृति पर मेधातिथि के भाष्य का उन्होंने अनुवाद किया। वह बृहद् ग्रंथ है, और आठ भागों में समाप्त हुआ है। हिन्दू जुरिसप्रडेन्स पर वह मान्य एवं प्रमाणिक ग्रंथ का स्थान रखता है। उनकी उपर्युक्त कृतियाँ प्राच्य सनातन ज्ञानार्जन पद्धति एवं नवीन प्रतीच्य समालोचनात्मक पद्धति का समन्वय है। विश्व के बड़े–बड़े दार्शनिकों एवं विद्या–व्यसनियों ने उनकी भूरि–भूरि प्रशंसा की है।[20]

निष्कर्ष :–

आधुनिक काल में पश्चिमीकरण, आधुनिक षिक्षा तथा विज्ञान के बढ़ते प्रभावों के कारण पारम्परिक ज्ञान पद्धतियों का क्षरण हो रहा है। अकादमिक क्षेत्र में इनका अध्ययन–अध्यापन तो हो रहा है, किन्तु व्यवहार में इनका उपयोग प्रायः क्षीण हो गया है, जबकि इनके प्रभाव की अनदेखी नहीं की जा सकती हैं। द्वन्द्वात्मक तर्क बुद्धि का ज्ञान के क्षेत्र में सदैव महत्व बना रहेगा, जिसका उद्भव न्याय दर्शन से हुआ है। अतः यह जरूरी है कि मिथिला की ज्ञान पद्धतियों की गवेषणा के माध्यम से इसकी प्रासंगिकता की पड़ताल की जाय। जाहिर है कि प्रस्तावित शोध विषय समीचीन ही नहीं अपितु अपने ज्ञान की जड़ों की तलाष के लिए जरूरी भी है।

संदर्भ सूचीः

1. राम प्रकाश शर्मा, मिथिला का इतिहास, पृ. 516
2. उपर्युक्त, पृ. 516
3. उपर्युक्त, पृ. 517
4. उपर्युक्त, पृ. 518
5. Achyutananda Das ()Ed.), Haribamsa, p-501
6. R.K. Nukherji, Ancient Indian Education, p- 512
7. R.K. Choudhary, op. cit., p. 227
8. D.C. Bhattacharya, op. cit., p.-110
9. M.M. Vidyabhushan, History of Logic, p.-534
10. D.C. Bhattacharya, History of Navya-Nyaya in Mithila, Darbhanga, 1987, p. 15-19
11. S.N. Dasgupta, A History of Indian philosophy, vol.-I, p.-303
12. R.K. Choudhary, op. cit. p. 272
13. Ganga Nath Jha, Kavirahasya, Hindustani Academy, Allahabad, 1950, IIEdn, p. 69.

14. R. Jha, IXth All India Oriental Conference, Varanasi proceedings, vol. I, Part II, p. 1- 310-25
15. उपर्युक्त, पृ. 522
16. राम प्रकाष शर्मा, मिथिला का इतिहास, पृ. 521
17. उपर्युक्त, पृ. 522
18. India Office Catalogue, Vol. II, p-560
19. D.C. Bhattacharya, op cit, p-108
20. उपर्युक्त, पृ. 103

❖